THE ECONOMIC TIMES

Date: 10-06-17

Media, Govt: Without Fear Or Favour

Press freedom and growth go together

The CBI raid on NDTV promoters' official and residential premises has negative implications for not just press freedom but India's economic growth as well. In its response to NDTV's statement on the raid, the Bureau states that it acted on the basis of a complaint by a shareholder of ICICI Bank and of NDTV alleging loss to ICICI Bank of Rs 48 crore arising from the preponement of a loan by the promoters, in collusion with bank officials, at a reduced rate of interest. It goes on to say that bank officials, whether in the public sector or in the private sector, fall under the purview of the Prevention of Corruption Act and the Bureau is fully empowered to act against those of their ilk who go astray. Going by this logic, any bank official who seeks to tackle the mounting burden of bad loans on banks' books by restructuring loans is vulnerable. Any haircut on any loan could elicit a complaint by any shareholder and the CBI could come visiting.

The biggest obstacle to economic growth in India right now is the twin balance-sheet problem-sheet problem: the bad loans on banks' books and their counterpart unserviceable loans on the books of India's large companies. Unless this is removed, private invertment cannot pick up and the investment ratio, the share of investment in GDP, which today is lower than in any year since 2004-05, cannot go up. Without raising private and overall investment in the economy, the growth rate cannot accelerate to levels that would create jobs to meet the rising demand from fresh cohorts entering the workforce every year. The government has empowered the RBI to tackle the bad loan problem. But the RBI cannot resolve the problem on its own. If senior bankers fear that any attempt to realise then one hundred paise on every rupee of outstanding loan could trigger an allegation of causing loss to the bank and invoke the wrath of the CBI's corruption hounds, restructuring of bad loans would suffer still-birth.The government must reiterate its commitment to both press freedom and the freedom of bankers to restructure loans without fear of CBI raids. Freedom, liberty and growth go together.

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 10-06-17

आंकड़ों से परे

जब भारतीय परिदृश्य को स्थूल आर्थिक आंकड़ों के चश्मे से देखा जाता है तो अर्थव्यवस्था पूरी तरह खुशहाल होने का आभास देती है। मुद्रास्फीति कम है, केंद्रीय राजकोषीय घाटे में लगातार गिरावट आ रही है और बाहरी खाता सुविधाजनक रूप से संतुलित है। खास तौर पर पिछले साल की शिथिलता के बाद विकास दर बेहतर हो सकती थी। लेकिन अधिकांश आकलनों में कहा गया है कि नोटबंदी के कम होते असर, एक और साल मॉनसून बेहतर होने के अनुमान और बेहतर निर्यात आंकड़ों से वैश्विक अर्थव्यवस्था में सुधार होने के संकेतों के चलते सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) की वृद्धि दर 7 फीसदी से अधिक रहेगी। सकारात्मक आर्थिक स्थिति के साथ केंद्र में एक सुरक्षित एवं ऊर्जावान सरकार भी मौजूद है। ऐसे में यह उम्मीद लगायी जा सकती है कि यह सरकार वर्ष 2019 में भी जीतकर आएगी। फिर चिंता किस बात की है?

चिंताएं तो बेशुमार हैं। पहली, राजनीतिक रूप से अहम हिस्सों को देखकर लगता है कि वे अशांति और असंतुष्टि के खौलते कड़ाहे बन गए हैं। कर्ज माफी समेत कई मांगों को लेकर प्रदर्शन कर रहे किसान हिंसक हो चुके हैं। जाट, गुज्जर और पाटीदार आरक्षित श्रेणी में शामिल करने की मांग को लेकर समय-समय पर प्रदर्शन करते रहते हैं। वहीं भीम आर्मी जैसे नए संगठन तीव्र होते जातिगत संघर्षों के संदर्भ में नागरिक अधिकारों के लिए लड़ाई लड़ रहे हैं। किसी न किसी बहाने बेलगाम होती निगरानी के साथ कश्मीर घाटी में भड़की हिंसा और विलगाव की तीव्रता भी देखी जा रही है। आर्थिक स्थिरता और सराहनीय विकास दर के लिए डींगें मारी जा सकती हैं लेकिन साफ है कि अभी बहुतेरी समस्याएं सतह के भीतर ही छिपी हुई हैं और बाहर आने का इंतजार कर रही हैं। कुछ समस्याएं तो ऐसी हैं कि वे बेहतर होने के बजाय बिगड़ सकती हैं। बैंकों को पेश आ रही समस्या ऐसी ही है। बिजली की मांग में कमी और नवीकरणीय ऊर्जा की प्रतिस्पद्र्धी दरों ने पहले से ही अलाभकारी ताप विद्युत केंद्रों की समस्या को और भी अधिक विकट बना दिया है। दूरसंचार सेवाओं की दरों में आई तीव्र गिरावट ने अधिकांश ऑपरेटरों को मुश्किल स्थिति में डाल दिया है। ऊर्जा और दूरसंचार कंपनियों पर कर्ज का भारी बोझ है जो बैंकों के परिसंपत्ति के 6 फीसदी से भी अधिक है। पहले से ही फंसे हुए कर्ज से परेशान बैंकों के लिए यह चिंता का नया विषय है। कर्जे माफ करने के कुछ राज्य सरकारों के ऐलान से बैंकों को कोई फर्क नहीं पड़ेगा क्योंकि नुकसान की भरपाई राज्य कर देंगे लेकिन राज्यों के बढ़ते राजकोषीय घाटे की हालत और भी खराब हो जाएगी। सरकार अगर मवेशियों की खरीद-बिक्री पर अपने कदम पीछे नहीं खींचती है तो मांस एवं चमड़ा निर्यात कारोबार से भी अधिक चुनौती दुग्ध व्यवसाय के सामने खड़ी हो जाएगी।उस स्थिति में पहले से ही संघर्ष की राह पर चल रहे किसानों का आक्रोश और बढ़ जाएगा। इसकी एक वजह यह है कि कृषि में विविधिता से होने वाले फायदे के निहितार्थ समझने की कोशिश ही नहीं की गई है। प्याज और आलू के साथ बागवानी उत्पादन में भी पिछले वर्षों में नाटकीय वृद्धि दर्ज की गई है। गेहूं और चावल जैसे उत्पादों के मूल्य सुनिश्चित होने के उलट बागवानी उत्पादों के लिए कोई मूल्य आश्वस्ति नहीं होती है। इसका मतलब है कि अच्छी फसल होने से आपूर्ति में तेजी आती है और फिर उस उत्पाद के दाम कम हो जाते हैं। इससे बागवानी और आलू-प्याज के किसान अक्सर नाखुश हो जाते हैं। मसलन, इस साल दालों के उत्पादन में नाटकीय तेजी आने से इसकी कीमतें धराशायी हो गई थीं। पिछले साल सूखा होने के बावजूद किसानों ने जितनी कमाई की थी, इस बार उन्हें उससे भी कम मिला है। भारतीय स्टेट बैंक के शोध दल के आंकड़ों से पता चलता है कि प्रमुख कृषि उत्पादों का मूल्य पिछले तीन वर्षों के औसत से भी कम है। ऐसे में किसानों की अशांति का अंदाजा पहले ही लगा लेना चाहिए था।दूसरे मोर्चे पर, आर्थिक प्रगति से होने वाले रोजगार सृजन, उत्पादन क्षमता के बेहतर उपयोग से नया निवेश आकर्षित करने, कंपनियों को लाभ पहुंचाने में मदद करने वाली क्षेत्रवार प्रगति और उससे कर्ज देनदारी की स्थिति में सुधार होने जैसे तमाम फायदे आज के समय में नदारद हैं। भारत की वर्तमान स्थिति को देखते हुए 7 फीसदी की विकास दर काफी नहीं है। सरकार पिछले तीन वर्षों में जिस संरचनात्मक सुधार को नजरअंदाज करती आई है, उस पर ध्यान देने के लिए अब भी उसके पास समय बचा हुआ है।

दैनिक जागरण

Date: 10-06-17

विदेश नीति के मोर्चे पर नई मुश्किलें

समंदर की लहरें नापने में नाविकों का कोई सानी नहीं होता, लेकिन कुछ पैमाने उनके मददगार होते हैं। समंदर चाहे शांत हो या उसकी लहरें उफान पर हों, दुनियाभर में स्वीकार्य पैमाने उन्हें मापने के काम आते हैं। अगर वैश्विक राजनीतिक-राजनयिक परिदृश्य में इस पैमाने का इस्तेमाल करें तो भारतीय प्रधानमंत्री का जहाज बेहद अशांत पानी में प्रवेश करता दिख रहा है। भले ही भारतीय प्रधानमंत्री हाल में चार देशों

का बेहद सफल दौरा करके लौटे हों और शंघाई सहयोग सम्मेलन यानी एससीओ में भाग लेने के लिए कजाकिस्तान पहुंच गए हों, लेकिन उनके समक्ष मौजूदा अस्थिर हालात को नकारा नहीं जा सकता। तेजी से बढ़ती वैश्विक अस्थिरता की आग इस महीने की पहली तारीख को अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप के उस बयान से भड़की जब उन्होंने एलान किया कि अमेरिका जलवायु परिवर्तन के पेरिस समझौते का हिस्सा नहीं रहेगा। बेवजह का विवाद तब पैदा हो गया जब ट्रंप ने इसके लिए भारत को निशाना बनाया। उन्होंने कहा कि इससे भारत को बेजा आर्थिक फायदा मिल रहा है। उनके इस बयान से दोनों देशों के रिश्तों में राजनयिक तल्खी सी आ गई। प्रधानमंत्री मोदी का इस महीने के अंत में वाशिंगटन में ट्रंप से मिलने का कार्यक्रम है। उनके दौरे से पहले प्रतिकूल संकेत दिख रहे हैं। भारत को लेकर ट्रंप के आरोपों का कड़ाई से खंडन करते हुए विदेश मंत्री सुषमा स्वराज ने कहा कि उनमें कोई सच्चाई नहीं है। जलवायु परिवर्तन के मसले को लेकर ट्रंप प्रशासन फिलहाल रक्षात्मक मुद्रा में है, क्योंकि पेरिस समझौते से कदम पीछे खींचने पर अमेरिका की दुनियाभर में निंदा हो रही है। इस निंदा पर अमेरिका की संयुक्त राष्ट्र में राजदूत निक्की हेली ने कहा है कि भारत, चीन और फ्रांस अमेरिका को न बताएं कि पेरिस समझौते पर उसे क्या करना है। भारत-अमेरिका द्विपक्षीय रिश्तों में यह महज एक पहलू भर है। ट्रंप प्रशासन 'बाय अमेरिकन, हायर अमेरिकन' यानी अमेरिकी उत्पाद खरीदने और अमेरिकी नागरिकों को ही रोजगार देने की रणनीति को प्राथमिकता दे रहा है। भारत के लिए इसके खासे निहितार्थ हैं। इसके चलते भारतीय आईटी कंपनियों के पेशेवरों को मिलने वाले एच1बी वीजा पर अब अनिश्चितता के बादल मंडराने लगे हैं।

मोदी-ट्रंप के बीच होने वाली पहली बैठक की सबसे बड़ी चुनौती रिश्तों में भरोसे की बहाली या उसमें कमी को पाटने की होगी। इसके साथ ही उन द्विपक्षीय रिश्तों में विश्वसनीय निरंतरता के भाव को भी सुनिश्चित करना होगा जिनकी बुनियाद राष्ट्रपति बुश के कार्यकाल में पड़ी और ओबामा के शासन में परवान चढ़ते हुए नए मुकाम पर पहुंची। अगर जलवायु परिवर्तन को एक संकेत के तौर पर देखें तो लगता है कि ट्रंप ओबामा की अधिकांश नीतियों को पलटने के लिए कमर कस चुके हैं। इसमें भारत-अमेरिका रक्षा संबंध भी कसौटी पर होंगे जिन्हें पूर्व रक्षा मंत्री एश्टन कार्टन ने बड़े करीने से आकार दिया था। ये रिश्ते प्रधानमंत्री मोदी के लिए कड़ी परीक्षा साबित होंगे। ट्रंप की ओर से ओबामा की नीतियों को पलटने की सोची समझी कोशिश ईरान के साथ संबंधों की तासीर बदलने के रूप में पहले से ही नजर आने लगी है। हालांकि इसमें भी हैरानी की कोई बात नहीं, क्योंकि अपने चुनाव अभियान में ट्रंप ने ईरान के साथ अमेरिका के परमाणु करार की कड़े शब्दों में आलोचना की थी। हाल में अमेरिकी राष्ट्रपति का सऊदी अरब दौरा भी अमेरिका के उसी पुराने रवैये को ही दर्शाता है जिसमें अमेरिका सऊदी अरब का पुरजोर समर्थन करते हुए ईरान को अस्थिरता एवं मुस्लिम जगत में चरमपंथ फैलाने का कसूरवार मानता आया है। अमेरिका के रवैये में आए ऐसे दोहरे बदलाव से पश्चिम एशिया की राजनीति में खासी उथल-पुथल मचनी शुरू हो गई है। यह क्षेत्र भारत के लिए भी बेहद महत्वपूर्ण है। सऊदी अरब और उसके साथी देशों द्वारा कतर का बहिष्कार करना अस्थिरता का ही परिचायक है। यह किसी से छिपा नहीं कि रियाद का ईरान और कतर के साथ छत्तीस का आंकड़ा है। उसका मानना है कि कतर इस्लामिक स्टेट और मुस्लिम ब्रदरहुड को समर्थन दे रहा है। ईरानी संसद पर आइएस के हमले के बाद सऊदी अरब और ईरान के बीच तनाव और बढ़ना तय है। इस सिक्के का दूसरा पहलू यह भी है कि मौजूदा अमेरिकी नीति में आतंक के प्रसार को लेकर वहाबी-सलाफी संगठनों की भूमिका की पूरी तरह अनदेखी की जा रही है।

अमेरिकी नीतियों में यह विरोधाभास सऊदी-ईरान प्रतिद्वंद्विता के मुताबिक ही है जिसकी जड़ों में शिया-सुन्नी विरोध है। इसका काफी हद तक असर एससीओ की उस बैठक में भी देखने को मिलेगा जिसमें भाग लेने के लिए प्रधानमंत्री कजाकिस्तान गए हुए हैं। कजाकिस्तान में भारत और पाकिस्तान, दोनों औपचारिक तौर पर एससीओ का हिस्सा बन जाएंगे। बीजिंग ने इस संगठन की शुरुआत 1996 में शंघाई फाइव के नाम से की थी। फिर 2011 में छह सदस्यों के साथ विस्तार कर इसे एससीओ का नाम दिया। आतंक के खिलाफ मोर्चा बनाकर क्षेत्रीय सुरक्षा सहयोग पर जोर देना एससीओ के मुख्य एजेंडे में शामिल है और चीन एवं रूस इसके दो मुख्य कर्णधार हैं। एससीओ शिखर सम्मेलन अफगानिस्तान और ब्रिटेन में बड़े आतंकी हमलों की पृष्ठभूमि में हो रहा है। हमेशा की तरह आतंकवाद को लेकर राजनीति भी हो रही है। यह तय है कि अस्ताना में होने वाले सम्मेलन में पाकिस्तान भी एक खास पहलू होगा। हाल में अफगानिस्तान में हुए आतंकी हमलों में पाकिस्तान

की भूमिका और तमाम अंतरराष्ट्रीय मंचों पर आतंक को लेकर भारत द्वारा उठाई जाने वाली आवाज के साथ ही इस मोर्चे पर प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की निरंतर कोशिश के बावजूद इसकी संभावनाएं कम ही हैं कि कजाकिस्तान में आतंकवाद के खिलाफ कोई सर्वमान्य हल निकलेगा। प्रधानमंत्री मोदी के लिए फिलहाल सबसे बड़ी चुनौती यही है कि अपने सुरक्षा एवं सामरिक हितों की खातिर अमेरिका से लेकर चीन और रूस तक पाकिस्तानी फौज की सराहना कर रहे हैं। यह मोदी की आतंक विरोधी मुहिम में आड़े आ रहा है। एक ओर अमेरिका, चीन और रूस के साथ द्विपक्षीय रिश्तों का तकाजा है तो दूसरी ओर यूरोपीय संघ और जापान के साथ रिश्तों की धुरी है। किसी एक खेमे के साथ लामबंदी की गुंजाइश कम है।मुश्किल भंवर में पतवार थामकर नैया पार लगाने में मोदी पहले भी अपनी क्षमता साबित कर चुके हैं। यहां तक कि प्रधानमंत्री बनने से पहले भी इस मामले में वह अपना जौहर दिखा चुके हैं जिसमें अमेरिकी वीजा पर हुए विवाद के मुद्दे पर उनका रवैया एक मिसाल है। अभी कजाकिस्तान के बाद इस महीने के आखिर में जब वह अमेरिका के लिए उड़ान पकड़ेंगे तो उनसे इसी तरह के चातुर्य और कौशल की उम्मीद होगी, क्योंकि वैश्विक सामरिक समंदर की लहरें अभी और ज्यादा हलचल मचाने वाली हैं।

सी उदयभास्कर | लेखक सामरिक मामलों के विश्लेषक हैं|

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

Date: 09-06-17

Fields of unrest

Better prices for produce, not loan waivers, is the right response to the farmers' protests

There is a clear pattern to the farmer agitations currently on in Maharashtra and Madhya Pradesh. To start with, they seem to be concentrated in the relatively more prosperous agriculture belts — the stretch from Nashik, Ahmednagar and Pune to Satara, Sangli and Kolhapur in Western Maharashtra and Neemuch, Mandsaur and Ratlam in MP's Malwa region. Farmers here grow a range of commercial crops. They are also largely from progressive agricultural communities such as Marathas and Patidars. These farmers — unlike their brethren in drought-prone Marathwada, Vidarbha or Bundelkhand, who are largely into subsistence agriculture, and often resort to seasonal migratory employment — have seen good times, particularly through the first decade of this century till about 2013. This was a period of remunerative prices for most crops on the back of a global agri-commodity boom and domestic demand fuelled by rising incomes.

The first setback to the above party came towards mid-2014, with the collapse of world commodity prices, leading to both falling exports and rising imports of farm products from the country. The current crisis, however, has to do more with domestic headwinds that may have some link with demonetisation. In virtually every crop marketed since November — whether soyabean, green gram, pigeon-pea and potatoes or tomato, onion, garlic, red chili, fenugreek, grapes and pomegranates — farmers have experienced huge price declines. The government claims this is mainly due to bumper production. But there is also a demand side. Produce trading in India is predominantly cash-based. The body blow this traditional agro-commercial capital has suffered due to demonetisation — and the inability of formal finance to fill the gap — may explain the apparent lack of liquidity in the markets now. With nobody really to buy and stock up, the speculative capital that used to buoy commodity prices has practically ceased to exist. And it's farmers who have taken the ultimate hit.

This situation is unsustainable, both politically and economically. But the solution cannot lie in farm loan waivers. Indebtedness is only the symptom of the actual disease, which is one of low prices and demand for produce. What the farm sector desperately needs is liquidity, which can come from institutional finance, modern agro-processing and organised retail, both domestic and foreign. While a zero GST rate on most primary farm produce is a welcome move, it needs to be supplemented with the removal of all restrictions on stockholding, domestic movement and exports. There is also a case to impose higher import duties, especially on pulses and edible oils, as a temporary measure. If there can be anti-dumping duties and minimum import prices on steel or float glass, why not for products from the farm — more so, in today's troubled times?